बिज़नेस स्टैंडर्ड
वर्ष 12 अंक 47

बदलाव आवश्यक

सरकार के फेम-2 (फास्टर एडॉप्शन ऐंड मैन्युफैक्चरिंग ऑफ हाइब्रिड ऐंड इलेक्ट्रिक व्हीकल्स इन इंडिया) कार्यक्रम की इसके मानकों को लेकर पहले ही आलोचना हो चुकी है। अभी हाल में बजाज ऑटो के प्रबंध निदेशक राजीव बजाज ने इस पर आरोप लगाया कि यह देश में इलेक्ट्रिक और हाइब्रिड वाहनों की पर्याप्त मांग सुनिश्चित किए बिना ही विनिर्माण को बढ़ावा देने का काम कर रहा है। फेम-2 को फरवरी में केंद्रीय मंत्रिमंडल ने मंजूरी दी थी और तीन वर्ष के दौरान इसकी लागत करीब 10,000 करोड़ रुपये से अधिक आएगी। इसके जरिये इलेक्ट्रिक और हाइब्रिड कार निर्माताओं को प्रोत्साहन देने का इरादा है। बजाज का मानना है कि इन कदमों के बजाय कोशिश यह की जानी चाहिए कि वाहन निर्माताओं को प्रति वर्ष एक खास संख्या में इलेक्ट्रिक वाहन बनाने को कहा जाए। यहां बजाज का सोचना गलत हो सकता है। इलेक्ट्रिक और हाइब्रिड वाहनों को तेजी से अपनाने की दिशा में प्रोत्साहन देना ही सबसे बेहतर तरीका है। देश के उद्यमी जगत का इतिहास ऐसे उदाहरणों से भरा रहा है जहां एक के बाद दूसरी सरकार ऐसी बातें कहती रही है लेकिन कुछ खास नहीं हुआ। ऐसा दोहराया नहीं जाना चाहिए। ऐसा कहने का यह तात्पर्य बिल्कुल नहीं है कि फेम-2 के प्रभाव में सुधार लाने के लिए भी उसमें कोई बदलाव नहीं लाना चाहिए। उदाहरण के लिए यह बात बिल्कुल सही है कि यह छोटे वाहनों को एक प्रकार से हतोत्साहित करता है क्योंकि प्रोत्साहन राशि का सीधा संबंध वाहन में प्रयोग की गई बैटरी के आकार से जुड़ा हुआ है। इलेक्ट्रिक दोपहिया वाहन और तीन पहिया वाहन भारतीय परिस्थितियों के लिहाज से सर्वश्रेष्ठ हैं। हकीकत में छोटे इलेक्ट्रिक स्कूटरों में यह क्षमता है कि वे देश के शहरी परिवहन में क्रांतिकारी बदलाव ला सकें। इलेक्ट्रिक स्कूटरों पर राइड साझा करने का चलन पहले ही पश्चिमी दुनिया में शुरू हो चुका है और इसे काफी अच्छा माना जा रहा है। सरकार को यह सुनिश्चित करना चाहिए कि फेम-2 को इस प्रकार तैयार किया जाए कि इलेक्ट्रिक दोपहिया और तिपहिया वाहनों का चलन कमजोर पड़ने के बजाय गति पकड़े।

हालांकि बजाज का यह कहना सही है कि सरकार की नीति में एक मूलभूत विसंगति है। फेम-2 को कुछ इस प्रकार तैयार किया जाना चाहिए कि मांग में सुधार हो, न कि उत्पादन को स्थानीय बनाने का प्रयास किया जाना चाहिए। फिलहाल इन वाहनों को योजना का लाभ मिलने के लिए यह आवश्यक है कि 50 फीसदी वाहन स्थानीय स्तर पर तैयार किए गए हों। सरकार को सौर पैनलों को लेकर छिड़ी लड़ाई से सबक सीखना चाहिए था। ऐसे में बेहतर यही है कि पहले अनुकूलन तैयार किया जाए, उसके बाद ही स्थानीय उद्योग तैयार किया जाना चाहिए। इलेक्ट्रिक और हाइब्रिड वाहनों के मामले में तो यह बात ज्यादा सही है क्योंकि हमारे यहां पहले ही वाहन क्षेत्र, दोपहिया और तिपहिया वाहन, साइकिल और वाहन कलपुर्जा क्षेत्र में काफी विशेषज्ञता मौजूद है। ध्यान इस बात पर केंद्रित किया जाना चाहिए कि उपभोक्ताओं को इलेक्ट्रिक वाहनों का इस्तेमाल सस्ता और आसान हो।

इस बात पर भी ध्यान होना चाहिए कि मौजूदा छोटे वाहनों को कम लागत पर बदलाव की सुविधा दी जाए। उदाहरण के लिए दिल्ली में सीएनजी से चलने वाले ऑटो रिक्शा बिना उनके मालिकों पर बहुत अधिक आर्थिक बोझ डाले इलेक्ट्रिक या हाइब्रिड वाहनों में बदले जा सकते हैं। इसके लिए वित्तीय क्षेत्र में कुछ नवाचार करना होगा। क्रिसिल ने कहा है कि फिलहाल देश में जो दोपहिया वाहन बन रहे हैं उनमें से 95 फीसदी वाहनों को फेम-2 के अधीन प्रोत्साहन नहीं मिल सकेगा। यह अपने आप में कतई अच्छा विचार नहीं है। वाहन निर्माता कंपनियों की लॉबीइंग को सफल नहीं होने देना चाहिए। सरकार को चाहिए कि इन मुद्दों को ध्यान में रखते हुए फेम-2 में बदलाव लाए।

अजय मोहंती

रिजर्व बैंक गैरजवाबदेह और कानून से ऊपर ?

आरबीआई सूचना के अधिकार के तहत जानकारियां देने से बचने की लगातार कोशिश करता रहा है। बैंकिंग नियामक पर जवाबदेही एवं पारदर्शिता से बचने के आरोप लगा रहे हैं देवाशिष बसु

भारतीय रिजर्व बैंक (आरबीआई) क्या सूचना का अधिकार (आरटीआई) अधिनियम को केंद्रीय सूचना आयुक्तों और उच्च न्यायालयों एवं उच्चतम न्यायालय के न्यायाधीशों से भी बेहतर ढंग से समझता है ? ऐसा लगता है कि वर्ष 2006 के बाद से आरबीआई की कमान संभाल चुके चार गवर्नरों, दर्जनों डिप्टी गवर्नरों और उनके मातहत अधिकारियों की सोच ऐसी ही रही है जो नागरिकों एवं कानूनविदों के बीच गहरी हताशा और निराशा का सबब रहा है। क्या उच्चतम न्यायालय का कोप इस भयंकर दंभ को खत्म कर देगा ?

उच्चतम न्यायालय ने आरटीआई अधिनियम के तहत वार्षिक निगरानी रिपोर्ट सार्वजनिक नहीं करने पर हाल ही में आरबीआई को अवमानना की कार्यवाही शुरू करने की चेतावनी दी। दुखद रूप से यह तमाशा पिछले कई वर्षों से जारी है। गत 10 वर्षों या अधिक समय से आरबीआई अपनी निगरानी रिपोर्ट और इरादतन चूककर्ताओं की सूची सार्वजनिक करने की मांग करने वाले आरटीआई आवेदनों को नकारता आ रहा है। उच्चतम न्यायालय के अलावा केंद्रीय सूचना आयोग (सीआईसी) भी यह कह चुका है कि आरबीआई बैंकों की निगरानी से संबंधित अपनी वार्षिक रिपोर्टें सार्वजनिक करने से मना नहीं कर सकता है। इसके बावजूद आरबीआई ने अड़ियल रवैया अपनाए रखा है। इसे देखकर हमें कोई आश्चर्य नहीं हो रहा है। आरबीआई के इस अक्खड़पन की एक वजह है।

दशकों तक आरबीआई अपने भारी गोलमाल के बाद भी बचा रहा। उसके पुराने दौर की रवायतें और प्रणालियां इस प्रतिभूति घोटाले की मुख्य वजह थीं। विशिष्ट क्षेत्र में रहने वाले गवर्नर और डिप्टी गवर्नरों को सार्वजनिक ऋण कार्यालय के कामकाज के बारे में कुछ पता ही नहीं था और न ही उन्हें ब्रोकरों और बैंकरों के फैलाए गड़बड़झाले के बारे में ही कोई सुराग था। करीब 25 वर्षों तक सार्वजनिक बैंक बैंकरों के साथ मिलीभगत करने वाले छोटे-बड़े कर्जदाताओं के हाथों लुटते रहे हैं।

आरबीआई के प्रतिनिधि इन बैंकों के बोर्ड में शामिल होते हैं और उसकी बैंकों के बहीखाते तक सीधी पहुंच होती है, वह वैधानिक ऑडिटरों को मंजूरी देता है, बैंकों से मासिक, तिमाही और वार्षिक रिपोर्ट मंगवाता है और बैंकों के चेयरमैन एवं कार्यकारी निदेशकों की नियुक्ति में भी उसकी हिस्सेदारी होती है। असल में, आरबीआई इकलौता ऐसा संगठन है जिसे बैंकिंग क्षेत्र में 25 साल से जारी लूट के बारे में सबकुछ पता है। इसके बावजूद बैंकों के दिवालिया होने और बड़े पैमाने पर कर्ज फंसने पर बैंकों में नए सिरे से पूंजी डालने की स्थिति पैदा होने पर भी आरबीआई पर कभी कोई आरोप नहीं लगे हैं।

दरअसल 'सार्वजनिक बुद्धिजीवी' रघुराम राजन समेत तमाम गवर्नरों के कार्यकाल में आरबीआई ने कॉर्पोरेट ऋण पुनर्गठन (सीडीआर), रणनीतिक ऋण पुनर्गठन, टिकाऊ पुनर्गठन योजना, सीडीआर-2 और 5/25 जैसी तमाम नाकाम योजनाओं के जरिये फंसे कर्ज की समस्या बढ़ाने में ही मदद की है। और आरबीआई की नियामकीय खामियों के बढ़ते जाने के बीच यह बैंकों की उपभोक्ता-विरोधी नीतियों और कदमों के ही साथ खड़ा रहा है। जब मनीलाइफ फाउंडेशन ने फ्लोटिंग दर प्रणाली के जरिये हो रही कर्जदारों की लूट के मसले पर उच्चतम न्यायालय में एक जनहित याचिका दायर की तो न्यायालय ने आरबीआई से इस पर जवाब देने को कहा था लेकिन केंद्रीय बैंक ने उस निर्देश को भी अनसुना कर दिया। इस याचिका में उठाए गए मसलों का कोई उल्लेख उसके जवाब में नहीं नजर आया।

आरबीआई ने उच्चतम न्यायालय के न्यायाधीशों के निर्देश के बाद भी आरटीआई अधिनियम की अवहेलना क्यों की है ? आरबीआई की दलील है कि आरटीआई के तहत मांगी गई जानकारियां 'वैधानिक विश्वास' से संबंधित हैं लिहाजा उन्हें सार्वजनिक दायरे में नहीं रखा जा सकता है। यह काफी बेतुका है। एक नियामक अपने नियमन में आने वाली इकाइयों को खास तरह की जानकारियां देने के लिए बाध्य करता है। यह रिश्ता भला वैधानिक विश्वास का संबंध कैसे हो सकता है ? वकील प्रशांत भूषण ने उच्चतम न्यायालय में यह दलील दी थी कि सार्वजनिक या निजी क्षेत्र के किसी भी बैंक का लाभ बढ़ाना आरबीआई का वैधानिक दायित्व नहीं है लिहाजा दोनों पक्षों के बीच विश्वास का रिश्ता ही नहीं बनता है। असल में, उच्चतम न्यायालय पहले ही कह चुका है कि आरबीआई किसी भी बैंक के साथ विश्वास-जनित रिश्ते में नहीं है।

सवाल है कि आरबीआई को कब तक इस जिद पर चलने दिया जाएगा ? दिसंबर 2015 में उच्चतम न्यायालय ने कहा था कि आरबीआई विश्वासपरक रिश्तों का हवाला देते हुए आरटीआई के तहत मांगी गई जानकारी देने से मना नहीं कर सकता है। न्यायमूर्ति एम वाई इकबाल और न्यायमूर्ति सी नागप्पन के खंडपीठ ने कहा था, 'अतीत में हम देख चुके हैं कि वित्तीय संस्थानों ने लोगों के साथ धोखाधड़ी की कोशिश की है। ऐसे काम न तो देश और न ही यहां के नागरिकों के हित में हैं। आश्चर्य की बात है कि एक वॉचडॉग के तौर पर आरबीआई को सूचना का अधिकार अधिनियम के तहत सूचनाएं आम लोगों तक पहुंचाने के लिए अधिक समर्पित होना चाहिए। हालांकि हम यह भी समझते हैं कि आरबीआई को हरेक कदम के लिए जिम्मेदार ठहराने की स्थिति में नहीं डाला जाना चाहिए। आरबीआई को आरटीआई अधिनियम की धारा 10(1) के तहत जानकारी देनी चाहिए।'

इतना स्पष्ट आदेश देने के तीन साल बीत जाने पर भी उच्चतम न्यायालय आरबीआई के आलाकमान को इसकी अहमियत समझा पाने में खुद को नाकाम महसूस कर रहा है। जनवरी 2019 में भी उच्चतम न्यायालय ने कहा था, 'आरबीआई को पारदर्शिता का पालन करना चाहिए और बैंकों को असहज करने वाली सूचना छिपानी नहीं चाहिए। उसका दायित्व है कि आरटीआई अधिनियम के प्रावधानों का अनुपालन करे और मांगी गई जानकारी दे।' अजीब बात है कि खुद आरबीआई ने भी 23 अप्रैल 1994 को जारी अपने एक परिपत्र में सभी बैंकों को यह निर्देश दिया था कि वे चूककर्ताओं के बारे में बैंकों और वित्तीय संस्थानों के साथ जानकारी साझा करे।

मार्दिया केमिकल्स लिमिटेड बनाम भारत संघ वाद में उच्चतम न्यायालय ने 8 अप्रैल, 2004 को सुनाए अपने फैसले में भी कहा था कि निजी लेनदेन अगर बड़े आकार का हो तो वह जनहित से जुड़ा मामला हो जाता है क्योंकि बैंकों में आम जमाकर्ताओं से मिली राशि का ही इस्तेमाल होता है। ऐसे में यह मानना नामुमकिन है कि आरबीआई के अधिकारियों को यह पता न हो। शायद वे नहीं चाहते हैं कि फंसे कर्जों की समस्या से निपटने के मामले में उनकी अक्षमता एवं कपटपूर्ण आचरण के बारे में किसी को पता चले।

(लेखक वेबसाइट मनीलाइफ डॉट इन के संपादक हैं)

सत्तर साल की उम्र के बाद भी शुरू हो सकती है नई जिंदगी

इंसानी पहलू

श्यामल मजूमदार

इंडसइंड बैंक के प्रबंध निदेशक रमेश सोबती अगले साल मार्च में 70 साल की उम्र पूरा करने के बाद सेवानिवृत्त होने वाले हैं। लेकिन सोबती का कहना है कि अगर भारतीय रिजर्व बैंक (आरबीआई) उन्हें आगे भी पद पर बने रहने की अनुमति दे तो वह काम जारी रखना पसंद करेंगे। सोबती ने हाल ही में सीएनबीसी टीवी18 को दिए एक साक्षात्कार में कहा कि एचडीएफसी बैंक के उनके समकक्ष भी अपने पद पर बने रहना चाहेंगे। वैसे एचडीएफसी बैंक के प्रबंध निदेशक आदित्य पुरी की इस बारे में राय नहीं पता है लेकिन इसके उलट विचार होने के कोई कारण नहीं हैं।

भले ही सेवानिवृत्ति की आय पूरी करने के बाद भी पद पर बने रहने की सोबती की चाहत पर बहस हो सकती है लेकिन उनकी साफगोई ताजी हवा के झोंके की तरह है। उनकी उम्र और पद वाले तमाम लोग सेवानिवृत्त होने को लेकर हिचकिचाहट दिखाते रहे हैं लेकिन पद पर बने रहने के लिए सभी तरह का बहाने बनाते रहते हैं। एक सक्षम उत्तराधिकारी का नहीं मिल पाना या फिर संक्रमण के दौर से गुजरने का हवाला देते हुए कंपनी के नेतृत्व में निरंतरता को जरूरी ठहराना इसके सामान्य बहाने होते हैं। कुछ लोग अपनी अपरिहार्यता में इस कदर यकीन रखते हैं कि वे पद छोड़ने से ही मना कर देते हैं। ऐसा होने का यह मतलब भी होता है कि नेतृत्व की दुर्लभ विलक्षणता के बारे में एक जैसी राय रखने वाले समूचे बोर्ड की सेवानिवृत्ति की उम्र लगातार बढ़ा दी जाती है। एक चेयरमैन खूब चर्चा में रहे थे जिन्होंने अपने पद पर बने रहने के लिए बोर्ड निदेशकों की सेवानिवृत्ति उम्र दो बार बढ़ा दी थी लेकिन जब उनकी सेवानिवृत्ति का समय आया तो उन्होंने निदेशकों की उम्रसीमा फिर से घटा दी।

हाल ही में कम-से-कम दो ऐसे हाई प्रोफाइल संभ्रांत लोग ऐसे रहे हैं जो अपने पसंदीदा लोगों को प्रबंध निदेशक नियुक्त करने के बाद गैर कार्यकारी चेयरमैन बन गए। 'द रिटायरमेंट सिंड्रोम' नाम के अध्ययन में इसके लिए अपने पीछे विरासत छोड़कर जाने की तीव्र इच्छा 'एडिफिस कॉम्प्लेक्स' को जिम्मेदार बताया गया।

कोई भी यह नहीं कह सकता है कि इन कॉर्पोरेट प्रमुखों ने कुछ खास नहीं किया है। ये सभी अत्यधिक विलक्षण हैं, काम के लिए उन्होंने अपना सर्वस्व दिया है और अपने संगठनों पर जबरदस्त असर डाला है। खामी बस यह है कि उन्होंने विदा होना नहीं सीखा जिससे उनके चुने हुए उत्तराधिकारी के लिए काम मुश्किल होता गया। उन सभी लोगों को देखकर वॉल स्ट्रीट जर्नल में प्रकाशित उस कार्टून की याद आती है जिसमें एक व्यक्ति को डेस्क पर झुका हुआ दिखाया गया था। उस कार्टून के साथ यह कैप्शन लगा था, 'वह एक कार्यकारी के रूप में सेवानिवृत्त हुए, सलाहकार बनकर लौटे और अब वह एक विचारमग्न उपस्थिति रखते हैं।' दरअसल लंबे कामकाजी जीवन के बाद सेवानिवृत्ति के बाद की निष्क्रियता किसी के लिए भी समस्या हो सकती है।

इसका वित्तीय जिम्मेदारियों से कोई लेना-देना होना भी जरूरी नहीं है। पद पर बने रहने की तीव्र आकांक्षा की परिणति बड़े स्तर पर ऐसे मामलों में होती है जिनमें लोग नियंत्रण बनाए रखने की मंशा रखते हैं। साफ तौर पर कहें तो किसी भी व्यक्ति के लिए 'आधिकारिक' सेवानिवृत्ति के समय नौकरी से अलग होना शायद सबसे मुश्किल काम होता है- भले ही आप एक प्रबंधन छात्र हों या किसी कंपनी के मुख्य कार्याधिकारी (सीईओ) हों। जैसे, स्टैनफर्ड के शोधकर्ताओं ने एक प्रयोग किया जिसमें 282 प्रबंधन छात्रों को एक नई कलाई घड़ी का विज्ञापन बनाने वाली टीम के प्रबंधक या उनके सहयोगियों की भूमिका निभाने को कहा गया था। इन आंकड़ों से पता चला कि जिस प्रबंधक ने काम को लेकर अधिक संलिप्तता और नियंत्रण महसूस किया उसने उतने ही अनुकूल ढंग से अंतिम विज्ञापन का मूल्यांकन किया।

लोग इसलिए भी पद छोड़ने में कठिनाई महसूस करते हैं कि उन्हें सेवानिवृत्त होने के बाद भावनात्मक अवलंबन की जरूरत होती है। यह विडंबना ही है कि अधिकतर लोग सेवानिवृत्त होने का इंतजार इस आस पर करते रहते हैं कि इससे उन्हें रोजमर्रा की जिम्मेदारियों से मुक्ति मिलेगी। लेकिन इनमें से अधिकतर लोगों ने इस मुक्त जीवन के लिए कोई तैयारी ही नहीं की थी और जल्द ही बोरियत महसूस करने लगे, जिंदगी का कोई मकसद नहीं रहा और खुद को अवांछनीय महसूस करने लगे। जब भी वे रात में सोने के लिए बिस्तर पर जाते हैं तो उन्हें यही सवाल सताता रहता है कि कल सुबह जगने के बाद क्या करूंगा ?

कुछ नहीं होने का यह अहसास सेवानिवृत्त होने के बाद सभी करियर-केंद्रित लोगों को होता है। फिल्म 'अबाउट श्मिट' में इसे बखूबी बयां किया गया है। इसकी कहानी एक जीवन बीमा कंपनी के वरिष्ठ पद से सेवानिवृत्त होने वाले वॉरेन श्मिट के बारे में है। फिल्म में श्मिट को अपनी नई जिंदगी के साथ तालमेल बिठाने में काफी मुश्किलें पेश आती हैं। वह अपने युवा उत्तराधिकारी को सलाह एवं मदद देने के लिए चले जाते हैं लेकिन वह उसे शालीनता के साथ नकार देता है।

'अनिच्छुक सेवानिवृत्त' हुए लोगों के लिए एक स्वाभाविक समाधान यह है कि जब तक संभव हो वे अपना काम जारी रखें। असल में, कुछ लोग ऐसा कर भी रहे हैं। अध्ययन से पता चलता है कि पिछले पांच वर्षों में ऐसे लोगों की संख्या बढ़ी है जो सेवानिवृत्ति के बाद भी काम कर रहे हैं। लेकिन मानव संसाधन विशेषज्ञों का कहना है कि लंबे समय तक बने रहने की कोशिश एक शख्स की अपरिहार्यता के बोझ तले पूरे संगठन के कुचल जाने का जोखिम बढ़ा देती है। विशेषज्ञों का मानना है कि लोगों को उस पुराने ढर्रे से अलग सोचना चाहिए जिसके मुताबिक लोगों को अपनी जिंदगी के सर्वाधिक उत्पादक वर्षों में पूरी कुशलता से किया गया काम सेवानिवृत्ति के बाद भी नहीं करते रहना चाहिए।

कानाफूसी

सटीक अनुमान

चुनावी खर्च को लेकर चुनाव आयोग की सख्ती और उम्मीदवारों की सतर्कता का एक दिलचस्प मामला पिछले दिनों सामने आया जब पूर्व वित्त मंत्री और कांग्रेस नेता पी चिदंबरम अपने बेटे कार्ति चिदंबरम के साथ तमिलनाडु के शिवगंगा में एक चुनावी जनसभा में शिरकत कर रहे थे। कार्ति शिवगंगा लोकसभा सीट से कांग्रेस के उम्मीदवार हैं। कार्यक्रम स्थल पर महिलाओं समेत तमाम पार्टी कार्यकर्ता एकत्रित थे। उनके बैठने के लिए करीब 100 प्लास्टिक की कुर्सियां भी रखी गई थीं। चिदंबरम ने कार्यकर्ताओं से कहा कि वे कुर्सियां हटा दें क्योंकि इससे चुनाव खर्च में इजाफा हो सकता है और बाद में चुनाव खर्च पर नजर रखने वाले निर्वाचन आयोग के पर्यवेक्षकों को समझाने में मुश्किल आ सकती है। बहरहाल, कुर्सियां तत्काल हटा दी गईं और महिलाओं ने वहां पड़े फ्लेक्स के बैनर पर बैठकर भाषण सुना। जनसभा चल ही रही थी कि चुनाव आयोग के व्यय पर्यवेक्षक वहां आ गए। पूर्व वित्त मंत्री चिदंबरम का आकलन एकदम सही साबित हुआ और पर्यवेक्षक इस बात से संतुष्ट होकर गए कि पार्टी ने बजट की सीमा का उल्लंघन नहीं किया है।

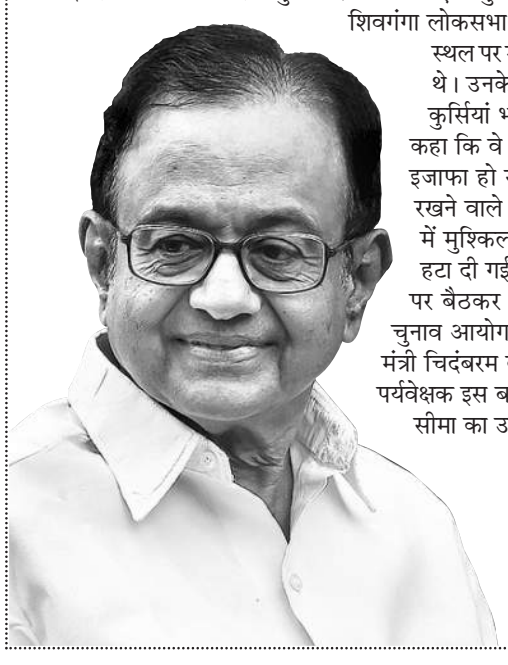

आपका पक्ष

लोगों को आत्मनिर्भर बनाने की जरूरत

कांग्रेस अध्यक्ष राहुल गांधी ने वादा किया है कि अगर 2019 में उनकी पार्टी सत्ता में आती है तो देश के 20 फीसदी गरीब परिवारों को सालाना 72 हजार रुपये दिए जाएंगे। इससे करीब 5 करोड़ परिवारों के 25 करोड़ लोग लाभान्वित होंगे। राहुल गांधी का तर्क है कि इससे गरीबी दूर करने में मदद मिलेगी। सवाल यह है कि गरीबों को देने के लिए सालाना 3 लाख 60 हजार करोड़ रुपये कहां से आएंगे। इसका अर्थव्यवस्था पर क्या प्रभाव पड़ेगा। राहुल इसकी स्पष्ट जानकारी नहीं दे रहे हैं। निस्संदेह गरीबी देश से दूर होनी चाहिए लेकिन जरूरतमंद गरीब लोगों को आत्मनिर्भर बनाने के ठोस उपाय किए जाने की जरूरत है, न कि बैसाखी पकड़ाने की। कोई भी देश आर्थिक प्रगति तभी करता है जब उसके नागरिक अपने बलबूते अपनी आमदनी बढ़ाने की कोशिश करते हैं। मुफ्त की चीजों से लोगों में अकर्मण्यता आएगी जो किसी भी देश के विकास में बाधक है। गरीबी दूर करने के लिए कुछ महत्त्वपूर्ण कदम उठाने की जरूरत है। जैसे निजी और शासकीय क्षेत्रों में फैले आय असमानता को दूर किया जाए। निजी क्षेत्रों में उच्च पदों पर आसीन अधिकारियों का वेतन निम्न पदों के कर्मचारियों की तुलना में कई गुना ज्यादा है। यह आय असमानता दोनों के जीवनस्तर को काफी प्रभावित करता है।

लोकसभा चुनाव : नगालैंड के कोहिमा में मतदान के लिए इंतजार करती महिलाएं

जरूरत है कि इस खाई को संपत्ति कर या टैक्स बढ़ाकर पाटा जाए। साथ ही निम्नस्तर के कर्मचारियों का वेतन बढ़ाया जाए। दूसरा, देश में सैकड़ों बिजली उद्योग तथा अन्य कारखाने बंद पड़े हैं जिसे चालू किया जाए। देश में जो उद्योग चल रहे हैं उनमें भी कर्मचारियों की संख्या काफी कम है और उनसे कार्य ज्यादा लिए जा रहे हैं। इस क्षेत्र में सुधार कर ज्यादा से ज्यादा रोजगार सृजन किया जाए तथा लोगों को रोजगार देकर आत्मनिर्भर बनाया जाए। तीसरा, देश के गरीब और वंचित लोगों को चिह्नित कर उन्हें मुख्य धारा में लाने के लिए शिक्षा का व्यापक स्तर पर प्रचार-प्रसार कर उन्हें प्रेरित किया जाए।

अमित पांडेय, बिलासपुर

पुलिस में महिलाओं की भागीदारी जरूरी

हम जब लिंग समानता की बात करते हैं तब यह बात सबसे महत्त्वपूर्ण हो जाती है कि समाज के सभी क्षेत्रों में महिलाओं की समुचित भागीदारी एवं पर्याप्त प्रतिनिधित्व सुनिश्चित करना आवश्यक है। आज महिलाओं ने कई क्षेत्रों में अपनी मजबूत उपस्थिति दर्ज की है। लेकिन कुछ विभाग ऐसे हैं जहां महिलाओं की उपस्थिति नगण्य है। उनमें से एक महत्त्वपूर्ण पुलिस विभाग है। केंद्रीय गृह मंत्रालय द्वारा जारी एक आंकड़े के अनुसार महिलाओं की पुलिस बल में भागीदारी महज 7.5 प्रतिशत है। देश में अपराध की दर तेजी से बढ़ रही है। महिला को नियम के तहत गिरफ्तार करने के लिए पुलिस बल में पर्याप्त संख्या में महिला पुलिसकर्मी का होना जरूरी हो जाता है। वर्तमान में महिला पुलिसकर्मियों की सुविधाओं का अभाव है। उन्हें मूलभूत सुविधाएं नहीं मिल पाती है। पुलिस बल में महिलाओं की भागीदारी बढ़ाने के लिए उनकी भर्ती की नीति बनानी होगी। सामाजिक सोच को बदलना होगा ताकि अभिभावक अपनी बेटी के करियर विकल्प के रूप में पुलिस विभाग को भी रखें। इसके लिए शिक्षण समाज में जागरूकता फैलानी होगी।

पाठक अपनी राय हमें इस पते पर भेज सकते हैं : संपादक, बिजनेस स्टैंडर्ड लिमिटेड, 4, बहादुर शाह जफर मार्ग, नई दिल्ली - 110002. आप हमें ईमेल भी कर सकते हैं : lettershindi@bsmail.in उस जगह का उल्लेख अवश्य करें, जहां से आप ईमेल कर रहे हैं।